International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 18-21

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 18-21
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 15-01-2015
Accepted: 10-02-2015

Bhairu Singh
(Research Scholar),
Special Center for Sanskrit Studies,
Jawaharlal Nehru University,
New Delhi - 110067

Correspondence
Bhairu Singh
(Research Scholar),
Special Center for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi - 110067

काव्यप्रयोजनों की वर्तमानकालीन प्रासंगिकता

भैरुसिंह मीना

सारांशिका

संस्कृत वाङ्मय भारतीय समाज के उदात्त विचारों का शोभन दर्पण है। सभ्यता के तथाकथित विकासोन्मुखी प्रवाह में भी प्रारम्भिक काल में साहित्य का रूप काव्यमय ही प्रकट होता है। वर्तमान समय में काव्य निर्माण की पूर्ण प्रेरणा कवियों को वेदों के साथ-साथ रामायण तथा महाभारत आदि से भी परम्परया प्रेरणाप्राप्ति का संकेत मिलता है फलतः विश्व के समक्ष संस्कृत काव्यों का प्रवर्तन हुआ। प्रत्येक शुभकार्य के प्रारम्भ में संस्कृत के रचनाकार प्रायः अपने इष्ट देवता का स्मरण मंगलाचरण के रूप में करते हैं और अपने ग्रन्थों के उद्देश्य को मंगलाचरण में ही स्पष्ट कर देते हैं। प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि आचार्यों ने जीवन के सभी पक्षों को काव्य सृजन का प्रयोजन माना है। उन्होंने जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष **(पुरुषार्थ चतुष्टय)** की सिद्धि की कामना की है।

प्रस्तावना

शास्त्र के प्रणयन में मंगलाचरण के बाद अनुबन्धचतुष्टय का निरूपण आवश्यक माना जाता है. "**सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते। शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः**"॥ ग्रंथ का अधिकारी, ग्रन्थ विषय, सम्बन्ध और प्रयोजन इन चारों को अनुवन्ध या अनुबन्धचतुष्टय कहते हैं। काव्यशास्त्र का विषय काव्यतत्व का विवेचन करना है। प्राणिमात्र के प्रत्येक कार्य का कोई न कोई निश्चित प्रयोजन होता है जो उसको कार्य करने की ओर प्रेरित करता है। बिना प्रयोजन के तो मन्द व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत नही होता है- **"प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते"**। काव्य-प्रयोजन का अर्थ है कि कवि अपने काव्य के द्वारा जिस वस्तु को प्राप्त करना चाहता है उस ईप्सित फल को काव्य का प्रयोजन, उद्देश्य या लक्ष्य कहते हैं। मनुष्य किस प्रेरणा से काव्य-सृष्टि करता है अथवा मनुष्य किस प्रयोजन से काव्य-सृष्टि करता है-ये दोनों वाक्य प्राय: एक जैसे ही है, परन्तु काव्यशास्त्रों में प्रेरणा तथा प्रयोजन का विश्लेषण पृथक ढंग से किया जाता है क्योंकि वहां प्रेरणा का अर्थ है, काव्य-निर्माण के लिए एक आंतरिक व्याकुलता और प्रयोजन का अर्थ है, उस काव्य-सृजन के द्वारा एक विशेष फल की इच्छा। प्रयोजन के बिना काव्य की सार्थकता ही नही है- **सर्वस्यैव शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित। यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत्केन गृह्यते।**

काव्य के लक्षण-विचारों का प्रारम्भ हमें ई.पू. की रचना भरत नाट्यशास्त्र में मिलता है, उसका विकासक्रम भामह, दण्डी, उद्भट, रूद्रट, आनन्दवर्धन, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, महिमभट्ट, विश्वनाथ, मम्मट, पण्डितराज जगन्नाथ तथा वर्तमान समय के आचार्यो तक चलता है। काव्य के प्रयोजन का अन्वेषण बहुमुखी आयाम रखते हुए विचारकोटि का अवगाहन करता है। प्रयोजन के विवेचन का क्रम भी आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से ही प्रारम्भ हो जाता है। आचार्य भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य अथवा काव्य के प्रयोजनों का वर्णन इस प्रकार किया है-

उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्। हितोपदेशजननं धृति क्रीडा - सुखादिकृत्।।
दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्। विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति।।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम्। लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।। [1]

अर्थात् आचार्य भरतमुनि के अनुसार काव्य (दृश्यकाव्य अर्थात् नाटक) के उत्तम, अधम, मध्यम पात्रों के चरित्र से धैर्य, मनोरंजन, आनन्द की प्राप्ति होती है। दुःखी, थके हुए, शोककार तथा तपस्वी लोगों को थकान मिटाकर विश्राम (शान्ति) प्रदान

करता है। इससे धर्म होता है, दीर्घकालिक यश मिलता है और बुद्धि का विकास होता है। उत्तरवर्ती आचार्यों ने भी इसी के आधार पर काव्य के प्रयोजनों का निरुपण किया है।

उत्तरवर्ती आचार्य भामह ने भी विस्तार से काव्य के प्रयोजनों का वर्णन अपने ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार' में किया है- उत्तम काव्य की रचना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-रूप चार पुरुषार्थों तथा समस्त कलाओं में निपुणता और कीर्ति एवं प्रीति अर्थात् आनन्द को उत्पन्न करनेवाली होती है अर्थात् इनके अनुसार कीर्ति एवं प्रीति के अतिरिक्त पुरुषार्थ-चतुष्टय, कला व्यवहार आदि मे निपुणता की प्राप्ति भी काव्य प्रयोजन है। [2]

आचार्य भामह ने कीर्ति को काव्य का मुख्य प्रयोजन मानते हुए इस के अभिप्राय को निम्नप्रकार उल्लेखित किया है-

उपेयुषामपि दिवं सन्निबन्धविधायिनाम्। आस्त एव निरातङ्कं कान्तं काव्यमयं वपुः॥
रुणद्धि रोदसी चास्य यावत् कीर्तिरनश्वरी। तावत् किलायमध्यास्ते सुकृती वैबुधं पदम्॥
अतोऽभिवाञ्छता कीर्तिं स्थेयसीमा भुवः स्थितेः। यत्नो विदितवेद्येन विधेयः काव्यलक्षणः॥ [3]

अर्थात् उत्तमकाव्यों की रचना करने वाले महाकवियों के दिवङ्गत हो जाने के बाद भी उनका सुन्दर काव्य- शरीर *"या*वच्चन्द्रदिवाकरौ" अक्षुण्ण बना रहता है और जबतक उनकी अनश्वर कीर्ति इस भूमण्डल तथा आकाश में व्याप्त रहती है तब तक वे सौभाग्यशाली पुण्यात्मा देवपद का भोग करते हैं। इसलिए प्रलयपर्यन्त स्थिर रखनेवाली कीर्ति के चाहनेवाले कवि को उनके उपयोगी समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त कर उत्तम काव्य की रचना के लिए प्रयत्न करना चाहिये।

आचार्य वामन अपने ग्रन्थ '*का*व्यालङ्कारसूत्र' में अच्छे काव्य के केवल दो प्रयोजन कीर्ति और प्रीति अर्थात् आनन्द मानते हैं। उन्होंने कीर्ति की अदृष्ट और आनन्द की अनुभूति *(*प्रीति*)* को दृष्ट या प्रत्यक्ष प्रयोजन कहा है. **काव्यं सद् दृष्टा दृष्टार्थं प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात्।** [4]

वे कीर्ति पर विशेष बल देते हुए आगे लिखते हैं.

प्रतिष्ठां काव्यबन्धस्य यशसः सरणिं विदुः। अकीर्तिवर्तिनीं त्वेवं कुकवित्वविडम्बनाम्॥
कीर्तिं स्वर्गफलामाहुरासंसार विपश्चितः। अकीर्तिन्तु निरालोकनरकोद्देश दूतिकाम॥
तस्मात् कीर्तिमुपादातुमकीर्तिञ्च व्ययोहितुम्। काव्यालंकारसूचार्थः प्रसाद्यः कविपुङ्गवैः॥ [5]

आचार्य भोजराज ने भी '*स*रस्वतीकण्ठाभरण' में रसास्वादन से युक्त प्रीति और कीर्ति को काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है-

निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन्कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति॥ [6]

आचार्य कुन्तक ने भी '*व*क्रोक्तिजीवित' काव्य रचना के लगभग उपर्युक्त प्रयोजनों को ही निरुपित किया है.

धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः। काव्यबन्धोऽभिजातानां हृदयाह्लादकारकः॥
व्यवहारपरिस्पन्दसौन्दर्यं व्यवहारिभिः। सत्काव्याधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते॥
चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्। काव्यामृत रसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते॥ [7]

अर्थात् काव्य की रचना अभिजात. श्रेष्ठ कुल में उत्तपन्न राजकुमार आदि के लिए सुन्दर एवं सरस ढंग से कहा गया धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि का सरल मार्ग है, और सत्काव्य के परिज्ञान से ही व्यवहार करने वाले सब प्रकार के लोगों को अपने-अपने व्यवहार का पूर्ण एवं सुन्दर ज्ञान प्राप्त होता है तथा उससे सहृदयों के हृदय में चतुर्वर्गफल की प्राप्ति से भी बढकर आनन्दानुभुतिरूप चमत्कार उत्पन्न होता है।

विश्वनाथ ने भी काव्य से चतुर्वर्ग फल प्राप्ति किस प्रकार होती है इसकी संयुक्तिक व्याख्या की है.

चतुर्वर्ग फलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि। काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरुप्यते॥ [8]

आचार्य मम्मट का*व्य* रचना को यशजनक, धन का प्रदाता, व्यवहार का ज्ञान कराने वाला, अनिष्ट का नाश करने वाला, तुरन्त परमानन्द देने वाला और स्त्री के समान उपदेश प्रदान करने वाला मानते हैं-

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यःपरनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥ [9]

मम्मट के अनुसार काव्य का प्रयोजन कवि को '*य*श दिलाना' है। कालीदास से लेकर आज के कवियों तक देखें तो हम पाते हैं कि सब '*य*शः प्रार्थी' होने की अभिलाषा रखते हैं। द्वितीय प्रयोजन '*ध*न की प्राप्ति' माना है। उस समय के कवियों के आश्रयदाता राजाओं के रूप में भी हुआ करते थे। वे इनसे धन पाते थे। जैसे धावक नामक कवि ने राजा हर्ष से प्रचुरमात्रा में धन लेकर रत्नावली नाटिका नामक ग्रन्थ से अपना नाम हटाकर लिखने वाले के स्थान पर राजा हर्ष का नाम डाल दिया। वर्तमान समय में राजा तो समाप्त हो गये परन्तु राजाओं का कवियों के प्रति पोषण कार्य प्रजातन्त्र की सरकार ने अपना कर्तव्य समझकर लिया और सभी प्रान्तों में साहित्य अकादमियों की स्थापना कर काव्य रचनाओं और विपुल मात्रा में पुरस्कार देने की व्यवस्था की गई। इसी का अनुसरण करके विभिन्न धनाढ्य साहित्य प्रेमियों ने बडे–बडे पुरस्कार कवियों के लिये स्थापित किये जो स्वातन्त्र्योत्तर काल से प्रति वर्ष दिए जाते है। तृतीय प्रयोजन '*व्य*वहार ज्ञान' है। कवि को अपने वर्णनीय देश, काल, चरित्र, वेशभूषा, वाणी का आदान प्रदान आदि व्यवहार जगत् का पूर्ण ज्ञान एवं परिचय होने पर उसकी रचना में जो निखार आता है वह काव्य का मौलिभूत प्रयोजन है। एक एक विषय को काव्य रचना में शामिल करने के लिए कवि व्यवहारजगत् का जितना सुक्ष्म निरीक्षण करता है उतनी ही उसके काव्य की अधिक लोकप्रियता होती है। काव्यों का निरन्तर अध्ययन करने तथा काव्य रचना में प्रवृति रखने से व्यवहार ज्ञान निश्चितरूप से होता ही है। जैसे कालिदास द्वारा रचित रघुवंश। इसमें रघुवंशदिग्विजय के प्रसंग में भौगोलिक ज्ञान का बहुत ही सुन्दर निदर्शन हुआ है, वह लौकिक भूगोलविषयक ज्ञान के लिए अध्येताओं के व्यवहारज्ञान की सीमा में वृद्धि करता है। वर्तमान साहित्य जगत में जीवन के व्यवहार ज्ञान से तुलसी, कबीर, रहीम, निराला आदि का साहित्य भरा पड़ा है और इनका सृजन हमें जीवन का व्यवहार ज्ञान देता है। चतुर्थ प्रयोजन 'शिवेतरक्षतये' को माना है। जिसका अर्थ है अमंगल का नाश होना। जैसे मयूर नामक कवि ने सूर्य की स्तुति कर कुष्ठ रोग से छुटकारा पाया था। वर्तमान समय में भी हम हनुमान

चालीसा से लेकर जितने भी पाठ करते हैंए इसी उद्देश्य से ही करते हैं। पञ्चम प्रयोजन सद्यः परनिर्वृतये माना है। अर्थात् दुख का नाश और आनंद की प्राप्ति। रस या आनंद प्राप्ति तो काव्य का सर्वस्व बहुत समय तक माना जाता रहा। काव्य की रचना स्वान्तः सुखाय होती है काव्य का यह प्रयोजन निश्चय रूप से आनन्द की प्राप्ति होती है। जयशंकर प्रसाद, रामचन्द्र शुक्ल और डॉण् नागेन्द्र ने भी रस अर्थात् आनन्द को ही काव्य का सर्वस्व माना। । षष्ठम् प्रयोजन कान्तासम्मित उपदेश है। अर्थात् काव्य मीठा.मीठा बोलने वाली स्त्री की तरह लोकहितकारी उपदेश देने वाली होनी चाहिए। गोस्वामी तुलसी दास ने रावण की पत्नी मन्दोदरी का ज़िक्र करते हुए कई बार उसके लिए कान्ता शब्द का प्रयोग किया है। कान्ता वह स्त्री होती है जो पति का हित चाहने वाली होती है। मन्दोदरी रावण को बार बार समझाती रही कि दूसरे की पत्नी और सम्पत्ति का हरण करने वाले का सर्वनाश हो जाता है, इसलिए सीता को लौटा दिया जाना चाहिए।

आचार्य मम्मट ने काव्य के प्रयोजन कान्तासम्मित उपदेश की व्याख्या करते हुए तीन उपदेश शैलियों की चर्चा की है, शब्दप्रधान अर्थप्रधान तथा रसप्रधान। जिन्हें क्रमशः प्रभुसम्मित सुहृतसम्मित और कान्तासम्मित शैली कहा है। शब्दप्रधान शैली अर्थात् प्रभुसम्मित उपदेश के अन्तर्गत वेदों एवं शास्त्रों के उपदेश को लिया है। राजकीय आदेश विधि, कानून नियमावलियाँ आदि इसी शैली के अन्तर्गत स्वीकार की गयी है। पुराणों और इतिहास आदि साहित्य को सुहृत्सम्मित या मित्रसम्मित उपदेश के अन्तर्गत एवं लोकोत्तर वर्णन शैली में निपुण कविकृत काव्य को कान्तासम्मित या रसप्रधान शैली के अन्तर्गत लिया गया है। पाश्चात्य विचारकों ने इसी तरह सम्प्रेषण की तीन विधियाँ बताई है, पितृसदृश, प्रौढ़सदृश और शिशुसदृश जो क्रमशः प्रभुसम्मित, सुहृद्सम्मित एवं कान्ता सम्मित उपदेशों के तुल्य या समानार्थी हैं। उपदेश शैली और सम्प्रेषण विधियों में पहली और तीसरी अर्थात् प्रभुसम्मित और कान्तासम्मित पितृसदृश और शिशुसदृश में तर्क का कोई स्थान नहीं है। दूसरे शब्दों में जिस प्रकार वेद शास्त्रादि शब्द प्रधान आर्दशों या विधान को हम बिना तर्क किए मानते हैं क्योंकि वे प्रमाण हैं उसी प्रकार अधीनस्थ कर्मचारी को बिना अगर मगर किए अधिकारी के आदेश का पालन करना पड़ता है। यही स्थिति कान्तासम्मित उपदेश और शिशुसदृश सम्प्रेषण की है। रामायण आदि काव्यों को पढ़कर हमें बिना तर्क किए अपने आप प्रेरणा मिलती है कि हमें राम की तरह आचरण करना चाहिएए रावण की तरह नहीं। अनियंत्रित भीड़ की माँग को पूरा करने का आश्वासन देने के अलावा सरकार या अधिकारी के सामने कोई दूसरा विकल्प नहीं होता। मित्रसम्मित उपदेश या प्रौढ़सदृश सम्प्रेषण में सलाह देने या तर्क वितर्क करने की पूरी गुंजाइश है।

काव्य प्रयोजन के संदर्भ में वर्तमानकालीन अवधारणा है कि कवि आत्माभिव्यकित की प्रेरणा से व्याकुल हो सृजन क्रिया में संलग्न होता है। कवि का लक्ष्य प्रयास को सार्थक या पूर्णरूप या सौंदर्य सर्जना करना है और इस सौंदर्य सर्जना में कवि को आनंद प्राप्त होता है। इसी का विवेचन करते हुए अभिनव गुप्त ने कहा है कि महाकवियों की बौद्धिक शक्ति का विशेष यह होता है कि रसावेश के लिए आवश्यक प्रज्ञा की निर्मलता उसमें निहित होती है और उस निर्मलता के द्वारा उसे सौंदर्य की प्रतीति होती है । सौंदर्य की इस प्रतीति का महाकवि के काव्य में आविर्भाव होता है। सृजन.प्रक्रिया से प्राप्त आनंद को कवि स्वयं प्राप्त करता है और यह कवि की ही इच्छा होती है कि पाठक में उसका संचरण हो और इस तरह पाठक को आनंद प्रदान करना कवि का प्रयोजन होता है।

काव्य के प्रयोजनों के सम्बन्ध में कुछ पाश्चात्य विद्वानों के विचारों को डॉ. राकेश गुप्त ने 'साहित्यानुशीलन' नामक ग्रन्थ में प्रकट किया है। अरस्तु के अनुसार काव्य का प्रयोजन अतिरिक्त मनोवेगों के विरेचन के द्वारा स्वास्थ्य का लाभ करना है। शैले ने मानव मानव के मध्य सहानुभूति और प्रेम का आनन्दमय विस्तार करना काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पाश्चात्य आचार्यों ने काव्य के प्रयोजनों के विषय में अपना विचार रखे है जो निम्न है.

• रिचर्डस के अनुसार. परस्पर विरोधी मनोवेगों के द्वारा मनस्तोष उत्पन्न करना।

• आर्नल्ड के अनुसार. आनन्द के सृष्टि द्वारा जीवनोपयोगी नैतिकता का विस्तार या जीवन की नूतन व्याख्या प्रस्तुत करना।

• सार्त्र के अनुसार. मानव के शेष जगत् से मुक्ति के प्रसंग में सहायता करना।

• मार्क्स एवं सार्त्र के अनुसार. वर्गमुक्ति के आन्दोलन में सहायता करना।

• फ्रायड के अनुसार. मानव की दमित अतृप्तियों के लिए मानसिक रूप से भोग को प्रस्तुत करना।

• प्रकृतिवाद एवं यथार्थवाद के अनुसार. मानव की आन्तरिक या बाह्य विकृतियों का विश्लेषण और यथावत् अङ्कन करना

• वाईल्ड एवं पो आदि के अनुसार. साहित्य अपनी सिद्धि अपने आप में हैए इससे आगे कुछ नहीं।

पाश्चात्य काव्य में काव्य प्रयोजन के संदर्भ में कलावादियों ने अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए कला के लिए मतवाद की स्थापना की। इस मतवाद का प्रथम उल्लेख सन् 1845 में विक्टर कुजों ने किया। फ्रांसिसी भाषा में इन्होंने 'ला आर्त पिओर ला आर्त' वाक्य का प्रयोग किया जिसका आक्षरिक अर्थ होता है. कला कला के लिए है। कला से इनका तात्पर्य या तो निर्विकल्प सौंदर्य या आंनद को पाना ही है। कविता का लक्ष्य केवल अनुभव हैए अनुभव का फल नहीं। ब्रैडले एवं वाल्टर पेटर ने इसे समझाते हुए बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि काव्यानुभव स्वयं अपना साध्य है, वह अपने ही कारण ग्राह्य है। अत: यह स्पष्ट है कि कला को चाहे निर्विकल्प सौंदर्य या आनंद अथवा जीवन का अनुभव या अभिव्यंजना कहें कला का उद्देश्य उसके रूपमात्र को अभिव्यक्त करना है। अभिव्यक्ति विषय की ही होती है एवं अभिव्यक्ति विषय को सामने लाने के लिए ही है। विषय और अभिव्यक्ति से युक्त काव्य की जो अखंड समग्रता है उसी में सौंदर्य अभिव्यक्त होता है। अभिव्यक्ति को सुंदर बनाने के लिए उसे आनंदात्मक भी बनाना पड़ेगा क्योंकि जो आनंदात्मक है वही सुंदर भी होता है और आनंद के साथ मन की कामना काफी घनिष्ठ रूप से युक्त रहती है। रामायण में राम के स्थान पर रावण को विजयी बनाने से रामायण सुंदर काव्य नहीं बन सकता था क्योंकि उससे मनुष्य मन के अंतरतम के नैतिक सत्य को आघात पहुँचता। अभिव्यक्ति जितना जीवन के नीति बोध को प्रकट करती है उतनी ही वह सुंदर होती है। इस प्रकार 'कला कला के लिए' मतवाद के प्रतिनिधि रूप में ब्रैडले ने यह स्पष्टतया बताया है कि यथार्थ जगत एवं विषयवस्तु के प्रति चरम उदासीनता ही कवि का कर्म होता है तथा काव्यलोक अपने आप में स्वतरू संपूर्ण होता है एवं काव्य का प्रयोजन काव्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है।

उपर्युक्त विद्वानों की काव्य सम्बधि मान्यतायों का अवलोकन करने पर हमें ज्ञात होता है कि काव्य के प्रयोजन एकांगी नही बल्कि बहुअंगी है। काव्य के प्रयोजन अनेकानेक है इनमें से कुछ मूल बुनियादि है तो कुछ अनुस्यूत है। वर्तमान समय में निम्न काव्य के प्रयोजन हो सकते है। रसास्वादन की प्राप्ति, मनोरंजन की प्रवृति, लोककल्याण की भावना, उपदेश की प्रधानता, आनन्द निर्माण की क्षमता, मार्गदर्शन करने की क्षमता, उज्जवल भविष्य निर्माण का दिग्दर्शन आदि। वर्तमान समय में भी काव्य के प्रयोजनों की प्रसंगिकता स्पष्टतया परिलक्षित होती है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. चव्हाण, डॉ. अर्जुन, समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, २००५
2. गुप्त, डॉ. शान्तिस्वरूप, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र सिद्धान्त,

लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, २००१

3. भामह, काव्यालङ्कार, सं. पी.वी. नागानाथ शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिसर्श, नई दिल्ली, १९९१
4. भोज, सरस्वतीकण्ठाभरण, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास, १९३७
5. मम्मट, काव्यप्रकाश, व्या. विज्ञानेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणासी, २००९
6. वामन, काव्यालङ्कारसूत्राणि, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५४
7. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, २०११